विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५३० | भाद्रपद पूर्णिमा | १८ सितम्बर १९८६ | वर्ष १६ अंक ३

धम्म वाणी

सब्ब दुक्खं परिञ्ञातं,
हेतु तण्हा विसोसिता ।
भावितो अट्ठङ्गिको मग्गो,
निरोधो फुसितो मया ॥
–थेरी गाथा - १५८

मैंने सारे दुःख का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है। दुःख के कारण तृष्णा को सुखा लिया उसे समाप्त कर लिया है। अष्टांगिक मार्ग को भावित कर लिया है और निरोध (निर्वाणिक) अवस्था का स्पर्श कर लिया है। (जो करना था सब कर लिया। मैं कृतकृत्य हुई, मुक्त हुई।)

धर्मचक्र कथा

(३)

अतियों की अंतिम पराकाष्ठा के दोनों छोर छोड़, मध्यमा प्रतिपदा का महत्व बताकर भगवान बुद्ध ने धर्मचक्र का मूल उपदेश प्रकाशित किया।

1. दुःख है।
2. दुःख-समुदय तृष्णा से होता है।
3. दुःख का निवारण है।
4. दुःख का निवारण मध्यमा प्रतिपदा से होता है।

जीवन जगत की ठोस सच्चाइयाँ। न कोई कल्पना-प्रसूत दार्शनिक मान्यता को स्वीकारने का आग्रह, न कोई निष्प्राण कर्मकांड का बंधन, न किसी अंधभक्ति का भावावेशीय घटाटोप, न किसी जातीयता व सांप्रदायिकता की उलझन में जकड़े जाने का जंजाल। सीधी, सच्ची, वैज्ञानिक बात; सार्वजनीन, सर्वहितैषी बात। काम की, सार की बात। रोगी के लिए इससे बढ़कर काम की बात और क्या होगी कि वह जाने कि यह रोग है और इस रोग का यह मूल कारण है। यह रोग का निवारण है और रोग के निवारण का यह सही उपाय है। इसी प्रकार भवरोगी के लिए भी यही चार काम की बातें हैं, कल्याण की बातें हैं।

किसी भी भवरोगी दुखियारे के लिए इन चार सच्चाइयों को हृदय से स्वीकार कर लेना अच्छा है। पर केवल स्वीकार करके ही रह जाय तो फिर किसी मान्यता मात्र में अटक कर रह जायेगा। अतः चिंतन-प्रज्ञा का अगला कदम उठाए। चिंतन करे कि इस अवस्था में मुझे क्या करना चाहिए? मेरे लिए क्या कृत्य है? क्या करणीय है? "योनिसोमनसिकार" याने सही ढंग से चिंतन करेगा तो ये चार बातें प्रकाश में आयेंगी :–

1. जो दुःखसत्य है इसका परिज्ञान हो याने इसके बारे में संपूर्ण जानकारी हो। अंतिम परिधि पर्यंत इसकी परियवेषणा हो याने इसका पूरा पूरा अनुसंधान हो। इससे संबंध रखनेवाली कोई भी स्थिति अंधेरे में न रह जाय।
2. जो समुदयसत्य है याने तृष्णा है उसको जड़ से उखाड़ लेना चाहिए।
3. जो दुःख-निवारण की याने दुःख-निरोध-सत्य की निर्वाणिक अवस्था है उसका स्वयं साक्षात्कार कर लेना चाहिए।
4. दुःखनिवारण के लिए यह जो आठ अंगवाला मार्ग-सत्य है, जो मध्यमा प्रतिपदा है, उस पर अंतिम लक्ष्य तक चल लेना चाहिए।

चिंतन-मनन के स्तर पर यह चारों कृत्य–करणीय समझ में आजाँय तो भी वह लाभ नहीं हुआ जो कि किसी भवरोगी को इन चारों सच्चाइयों से प्राप्त हो सकता है। वह लाभ तब होता है जबकि कोई व्यक्ति इन चारों कृत्य-करणीय को कृत बना ले, याने सचमुच कर ले। भावनामयी प्रज्ञा द्वारा भावित कर ले। उस अवस्था पर पहुंच जाय जहाँ निश्चयपूर्वक कह सके कि :–

1. दुःखसत्य का परिज्ञान कर लिया।
2. समुदयसत्य याने तृष्णा का पूर्ण उच्छेद कर लिया।
3. निरोधसत्य याने निर्वाणिक अवस्था का स्वयं साक्षात्कार कर लिया।
4. मार्गसत्य याने अष्टांगिक मार्ग पर पूरी तरह चल लिया।

ये चारों कर लिए तो ही कृत-कृत्य हुआ; प्राप्त-प्राप्तव्य हुआ;

भारमुक्त, बंधनमुक्त, दुःखमुक्त हुआ। तभी यह चारों सत्य आर्य-सत्य हुए। इन्हें धारण करनेवाला भवरोगी अनार्य, भवमुक्त आर्य हुआ।

इन आर्यसत्यों को तिहरे रूप में याने बारह प्रकार से संपूर्ण आत्मसात करे तो ही कोई व्यक्ति सही माने में दुःखमुक्त होता है, अर्हत होता है। अन्यथा मुक्ति के नाम पर धोखा ही चलता है।

अनेक लोग तब भी रहे और आज भी हैं ही; जो बुद्धि के स्तर पर खूब स्वीकार करते हैं कि दुःख का कारण राग-द्वेष मयी तृष्णा ही है और यह भी कि तृष्णा को दूर करके दुःख से मुक्ति पायी जा सकती है। पर तृष्णा को वस्तुतः दूर करते नहीं, तो दुःख से मुक्त होते नहीं। बहुत से तो यही नहीं समझते कि तृष्णा को कैसे दूर करें? परन्तु अनेक ऐसे भी हैं जो बुद्धि के स्तर पर खूब अच्छी तरह समझते हैं कि शील, समाधि, प्रज्ञा के अष्टांगिक मार्ग पर चलकर तृष्णा की जड़ें उखाड़ी जा सकती है। परन्तु मार्ग पर चलते नहीं। चारों आर्य-सत्यों को स्वयं अनुभव करते नहीं और अनुभव करने का कोई प्रयत्न भी करते नहीं तो अभागे ही हैं। दुःखमुक्त नहीं हो पाते।

भगवान ने अपने पांचों शिष्यों को दुःख-विमुक्ति का यह उपदेश देते हुए कहा कि जब तक इन चार सत्यों को ठीक प्रकार से द्वादसाकार स्वयं अनुभूत न कर लिया याने "यथाभूत ज्ञानदर्शन सुविशुद्ध" न कर लिया तब तक मैंने यह घोषणा नहीं की कि मैंने सर्वोच्च सम्यक् सम्बोधि का साक्षात्कार कर लिया है; मुझमें सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन सुपुष्ट हो गया है; मेरा चित्त सदा के लिए विकार-विमुक्त हो गया है; यह मेरा अंतिम जन्म है; अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा। जब ऐसा कर लिया तभी यह दावा किया। यह करने का ही फल है। बिना किए कुछ होता नहीं। पर कैसे करें?

कैसे करें? इसका उत्तर इन चार शब्दों में समाया हुआ है।

"यथाभूतं ञाणदस्सनं सुविसुद्धं अहोसि"

यही इस उपदेश का सार है – यथाभूत ज्ञान-दर्शन विशुद्ध हुआ। अथवा यूं कहें – विपश्यना विशुद्ध हुई। शुद्ध विपश्यना द्वारा यथाभूत का दर्शन करते करते ही दर्शन सम्यक् दर्शन हुआ; ज्ञान सम्यक् ज्ञान हुआ; विमुक्ति सम्यक् विमुक्ति हुई। चारो आर्य-सत्यों का यथाभूत दर्शन शुद्ध रूप में न करें तो विमुक्त नहीं हो सकते।

भगवान ने जब इसका व्याकरण–व्याख्यान किया याने स्पष्टीकरण किया तो पांचो में से एक कौण्डन्य को विरज-विमल धर्मचक्षु जागे। उसे सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ। याने विपश्यना द्वारा यह बोध हुआ कि जो कुछ समुदय स्वभाव का है वह निरोध स्वभाव का है ही। याने नाम-रूप के सारे क्षेत्र का समुदय-व्यय देखते देखते उसने उसके निरोध अवस्था का भी साक्षात्कार कर लिया, वह अवस्था जो नाम और रूप (चित्त और शरीर) के परे की अवस्था है, उसका भी साक्षात्कार कर लिया। पहली बार निर्वाणिक अवस्था की अनुभूति हुई तो स्रोतापन्न हो गया, अनार्य से आर्य हो गया।

आओ, हम भी इस महत्वपूर्ण उपदेश के सार स्वरूप इन शब्दों को जरा विस्तार से समझें।

यथाभूत ज्ञान-दर्शन याने दर्शन और ज्ञान यथाभूत का हो। जिस क्षण जो घटना अपने आप कुदरतन घटी, उसे ही उस क्षण साक्षीभाव से देखा और उसे समझा तो ही सम्यक् दर्शन हुआ; तो ही सम्यक् ज्ञान हुआ।

यथाकृत नहीं। याने कुछ गढ़कर, निर्माण करके किसी कृत्रिम, बनावटी आलंबन का दर्शन-ज्ञान नहीं करना है।

यथाकल्पित नहीं। यथाभूत यथार्थ को कहते हैं। अपनी परंपरागत दार्शनिक मान्यता के आधार पर किसी बात की कल्पना करें और फिर उसका दर्शन-ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करें, ऐसा नहीं।

यथासंकल्पित नहीं। याने संकल्प-विकल्प द्वारा, चिंतन-मनन द्वारा किसी मान्यता को आधार मानकर उसका दर्शन-ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं।

यथावांछित नहीं। याने अपनी कामना के लक्ष्य का ध्यान करके उसके दर्शन-ज्ञान का प्रयत्न नहीं।

यथाआरोपित नहीं। याने किसी मिथ्या बात का आरोपण करके उसके दर्शन-ज्ञान का प्रयत्न नहीं।

जो यथार्थ प्रकट हुआ केवल उसीका दर्शन-ज्ञान।

यह यथाभूत दर्शन-ज्ञान किसमें हो? विपश्यना कहां करें? उसका विषय क्या हो? इस संबंध में भगवान ने कहा, "इमेसु चतुसु अरियसच्चेसु" याने इन चार आर्यसत्यों में यथाभूत दर्शन-ज्ञान हो।

दुःख में, दुःख के कारण तृष्णा में, दुःख के निरोध में, निरोध के उपाय – अष्टांगिक मार्ग में।

और ये चारों शरीर की सीमा के भीतर हैं। शरीर की सीमा के भीतर ही एक रूप-स्कंध और चार चित्त-स्कंध हैं। और इन पांचों स्कंधों के क्षेत्र में ही दुःख समाया हुआ है। दुःख का यथाभूत ज्ञान-दर्शन यहीं करना होगा। इन पांच स्कंधों के भीतर ही समुदय याने तृष्णा समायी हुई है। यहीं राग और द्वेष जागते हैं। प्रिय मनचाही को प्राप्त करने और रोके रखनेवाली रागमयी तृष्णा और अप्रिय अनचाही को दूर धकेलनेवाली द्वेषमयी तृष्णा। शरीर की सीमा के भीतर इनका यथाभूत ज्ञान-दर्शन करके इन्हें दुर्बल बनाकर समाप्त किया जा सकता है। और यों दुःख का समापन किया जा सकता है। दुःखनिरोध की निर्वाणिक अवस्था का भी इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर ही साक्षात्कार किया जा सकता है, बाहर नहीं। और दुःख-निवारण के अष्टांगिक मार्ग का दर्शन भी नाम-रूप पर ही किया जा सकता है, बाहर नहीं। अष्टांगिक मार्ग काया, वाणी, चित्त के सभी कर्मों को सुधारने का मार्ग है और सभी कर्मों की चेतना भीतर जागती है, उनका उद्गम शरीर की सीमा के भीतर ही होता है, बाहर नहीं। अष्टांगिक मार्ग

शील, समाधि, प्रज्ञा का मार्ग है और इन तीनों का उद्‌गम भीतर है, बाहर नहीं।

अतः यथाभूत ज्ञान-दर्शन करनेवाले व्यक्ति को काया और चित्त पर प्रकट होनेवाली क्षण क्षण की सच्चाइयों का ज्ञानपूर्वक दर्शन करना होता है। दर्शन याने उस सच्चाई के प्रति तटस्थभाव रखे; भोक्ताभाव नहीं, कर्ताभाव नहीं। ज्ञान याने उसके सही स्वभाव का ज्ञान। अनित्य को अनित्य स्वभाववाला, दुःख को दुःख स्वभाववाला, अनात्म (अहं, मम-विहीन) को अनात्म स्वभाववाला ही समझे। यह सब कुछ अनुभूतिजन्य ज्ञान द्वारा समझे। और जब नाम-रूप के प्रपंच का ज्ञान-दर्शन करता हुआ; उसका भी अतिक्रमण कर ले तो इंद्रियातीत, लोकातीत, नित्य, शाश्वत निर्वाण का साक्षात्कार कर ले। दुःख-निरोध का भी यथाभूत ज्ञान-दर्शन कर ले। यह भी साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर ही करना होता है। अतः चारों आर्य-सत्यों का ज्ञान-दर्शन भीतर ही करना होता है।

साधक आरंभ कैसे करे ? पहले प्रथम आर्यसत्य याने दुःख के परिज्ञान के लिए उसी का दर्शन करना शुरू करे। नाम-रूप का प्रपंच जिस क्षण जैसा प्रकट हुआ उसका वैसे ही दर्शन शुरू कर दे। अभी परिज्ञान पूरा नहीं हुआ, पर अष्टांगिक मार्ग का पहला कदम तो उठ ही गया। सम्यक् दर्शन का काम आरंभ हो गया। ऐसी अवस्था में साधक देखेगा कि संकल्प को सम्यक् करना आवश्यक है। जब ऐसा करना शुरू कर देता है तब देखता है कि सम्यक् संकल्प तभी संभव है जबकि शील शुद्ध हो याने वाणी सम्यक् हो, शारीरिक कर्म सम्यक् हो, आजीविका सम्यक् हो। अतः इन्हें शुद्ध रखता है और देखता है कि यह भी तभी संभव है जबकि व्यायाम सम्यक् हो, जागरूकता सम्यक् हो और जागरूकतावाली समाधि सम्यक् हो। तो इन तीनों के लिए भी प्रयत्न शुरू करता है। यों सम्यक् दर्शन करता हुआ पूरे अष्टांगिक मार्ग को भावित करने लगता है, पुष्ट करने लगता है। मध्यमा प्रतिपदा के एक एक अंग को जीवन में उतारता है और यथाभूत देखता है — यों चौथे आर्यसत्य को भावित करने का काम शुरू हो जाता है।

मार्ग के अष्टांगों का ध्यान करता हुआ दुःख-दर्शन करता है। नाम-रूप का दर्शन करता है तो अनुभूतियों के स्तर पर यह भी स्पष्ट होने लगता है कि जब जब मानस में राग या द्वेष जागता है, तब तब दुःख ही पैदा होता है। यों दुःख-समुदय रूपी द्वितीय आर्य-सत्य का बोध होने लगता है। उसका यथाभूत दर्शन करता है तो यह भी स्पष्ट होने लगता है कि अज्ञान के कारण ही राग-द्वेष जागता है। जो अनित्य है, दुःख है, अनात्म है; उसे यथाभूत देखता हुआ उस पर नित्य, सुख और आत्म का मिथ्या आरोपण नहीं होने देता तो मोह-मूढ़ता से छुटकारा पाता है। परिणामतः तृष्णा अपने आप क्षीण होती जाती है। तटस्थभाव से सारे प्रपंच को देखता जाता है तो राग-द्वेष के पूर्व संचित संस्कारों का निरोध होने पर पहली बार दुःख-निरोध याने निर्वाण का साक्षात्कार कर लेता है। साधक स्रोतापन्न अवस्था तक पहुँच जाता है। इसी अवस्था को और आगे बढ़ाता है तो सकदागामी, अनागामी की अवस्थाओं में से गुजरता हुआ अर्हंत अवस्था तक पहुँच जाता है। यों दूसरे आर्यसत्य "तृष्णा" का समूल उच्छेद कर लेता है। प्रथम आर्यसत्य पूर्ण परिज्ञात हो जाता है। चतुर्थ आर्यसत्य अष्टांगिक मार्ग भावित हो जाता है। तृतीय आर्यसत्य "निरोध" का साक्षात्कार हो जाता है। यथाभूत ज्ञान-दर्शन विशुद्ध हुआ। क्योंकि उसमें कहीं कोई कृत्रिम, कल्पित, संकल्पित अथवा मनोवांछित मिथ्या बातों का आरोपण नहीं होने दिया। जिस जिस समय जो जो यथार्थतः हुआ केवल उसी का ज्ञानपूर्वक दर्शन किया। ज्ञान याने बुद्धिवाला ज्ञान नहीं, अनुभूतिवाला ज्ञान। तो ही यथाभूत ज्ञान-दर्शन संपन्न हुआ। तो ही विपश्यना सफल हुई। साधक कृतकृत्य हुआ।

आओ साधकों, हम भी इन चारों सत्यों का विशुद्ध वास्तविक ज्ञान-दर्शन करें! कहीं इन्हें किसी सांप्रदायिक मान्यता का दर्शन मात्र बनाकर किसी संप्रदाय की उलझन में न उलझ जाँय! जो बात हमारी मुक्ति के लिए समझायी गयी, उसका उपयोग अपनी मुक्ति के लिए ही करें! भक्ति-भावावेश के लिए नहीं; बुद्धि-किलोल के लिए नहीं; सांप्रदायिक मान्यताओं में बंधने के लिए नहीं!

सत्य धर्म धारण करने में ही हमारा सही कल्याण समाया हुआ है।

(क्रमशः)

कल्याणमित्र
सत्यनारायण गोयन्का

सामूहिक साधना

बड़ौदा

विशेष कार्यक्रम : २८ सितम्बर, रविवार, दोपहर ३ से ५ बजे तक
संपर्क : डॉ. शा. न. अमीन, पुष्प निवास, ४०, तपोवन सोसायटी, नेशनल हाइवे, बड़ौदा-३६०००२.

रतलाम

श्री सोहनलाल, सामेश्वर प्राकृतिक चिकित्सालय,
चौमुखीपुल, रतलाम
प्रतिदिन – प्रातः ६ से ७ एवं सायं ६ से ७ बजे तक.
यहाँ साधना के लिए नवनिर्मित भवन में लघु-शिविर की भी सुविधा उपलब्ध है।

फरीदाबाद

श्री एम. एल. चर्त्थ, ७–बी / ५५३, सेक्टर ७, फरीदाबाद-१२१००६
फोन : ८१-२३४४७ / ८१२४६१ ext. ४५४, निवास-८८४२१८४
(दिल्ली से केवल ३५ कि. मी. दूर जहाँ से नियमित बस सेवाएं उपलब्ध हैं।)
प्रत्येक रविवार- प्रातः ८ से ६ बजे तक सामूहिक साधना तथा हर महिने के दूसरे शनिवार को दिन भर का स्वयं-शिविर प्रातः ८ से सायं ४-३० बजे तक पूर्ण मौन के साथ भोजन-नाश्ते की व्यवस्था है। इच्छुक साधक सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

अहमदाबाद

श्री मोहनलाल केडिया, २० श्रीनाथकृपा सोसायटी, सरदार पटेल हाईस्कूल के सामने, मणीनगर–३८०००८
प्रति रविवार– प्रातः १० से ११ बजे

पालि कान्फरेन्स

आगामी २० दिसम्बर से १ जनवरी, ८७ तक धम्मगिरि पर पालि विद्वानों की एक विशेष सभा बुलाई गयी है जिसमें देश-विदेश के अनेक गण्यमान्य विद्वान भाग लेंगे। इसमें साधना संबंधी शोध-कार्य एवं पालि पुस्तकों के शोधपूर्ण हिन्दी अनुवाद करने के महत्वपूर्ण निर्णय लिए जायेंगे। इन विषयों पर चर्चाओं के अतिरिक्त दिसम्बर २२ से ३१ तक ९ दिवसीय एक विशेष शिविर भी होगा जिसमें विद्वानों के साथ कुछ अन्य चुने हुए लोग भी भाग ले सकेंगे साधक सम्मिलित होना चाहें तो व्यवस्थापक को लिखें। स्थान की सुविधा होगी तो ही अनुमति दी जा सकेगी।

नम्र निवेदन

कृपया ध्यान दें "विपश्यना" मासिक पत्रिका केवल विपश्यी साधकों के लिए ही है। साधक जब पत्रिका-शुल्क भेजें तो "मैंने शिविर में भाग लिया है" का उल्लेख अवश्य करें। अन्यथा शुल्क-राशि लौटा दी जायेगी।

बम्बई में सार्वजनिक प्रवचन

स्थान – भारतीय विद्या भवन

१.१०.८६ – सायं ७ से ८–३०

(आयोजकः वर्ल्ड वेजिटेरियन कॉंग्रेस, इण्डिया)

९.१०.८६ – सायं ६.१५ से ७.१५

(आयोजकः भारतीय विद्या भवन)

अंग्रेजी में विशेषांक

धम्मगिरि में विपश्यना शिविर प्रारंभ हुए दस वर्ष पूरे हो रहे हैं। इस उपलक्ष्य में एक विशेषांक प्रकाशित होगा। साधकों के अनुभवयुक्त प्रेरणात्मक लेख आमंत्रित है।

दूहा धरम रा

आठ अंग को धरम पथ, दियो बुद्ध भगवान।
चलतां चलतां आप ही, पावै पद निरवाण॥

ज्यूं ज्यूं चालै धरम पथ, पाप छूटता जाय।
काया वाणी चित्त का, करम सुधरता जाय॥

ज्यूं ज्यूं चालै धरम पथ, पथिक बदलतो जाय।
सील समाधि ग्यान मँह, समरथ बणतो जाय॥

जाण्यो अपणै दुक्ख को, गैरो ऊँडो ग्यान।
दुक्ख निवारण कर लियो, कर बिपस्सना ध्यान॥

दुख को कारण जाणग्यो, बिपस्सना रै जोग।
देख्यो द्रस्टाभाव सूं, दूर कर्‌यो भव रोग॥

त्रिस्ना जड़ सूं खनण को, किसो क सरल उपाव।
निरबिकार निरखत र वै, काया चित्त सुभाव॥

दोहे धरम के

छूटे मिथ्या मान्यता, दूर कल्पना होय।
सत्य देखते देखते, सम्यक् दर्शन होय॥

छूटे कृत्रिमता सभी, आरोपण ना होय।
सहज सत्य को देखते, सम्यक दर्शन होय॥

सम्यक् दर्शन के बिना, सम्मक् ज्ञान न होय।
दर्शन ज्ञान विशुद्धि बिन, सम्यक् मुक्ति न होय॥

यथा भूत को देखते, हो विपश्यना शुद्ध।
उखड़े कारण दुक्ख के, होवे दुक्ख निरुद्ध॥

तन मन निरखत निरखते, निर्विकार बन जाँय।
त्तो दुख के उत्पाद की, जड़ें सभी हिल जाँय॥

दुख का कारण राग है, दुख का कारण द्वेष।
राग द्वेष जिसके मिटे, सहज मिट गए क्लेश॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७
की मंगल कामनाओ सहित

विपश्यना विशोधन विन्यास के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. दूरभाष ८६
भाद्रपद पूर्णिमा * मुद्रण स्थान : विपश्यना प्रेस, धम्मगिरि, इगतपुरी. दूरभाष : ७६, १७६ * September 86

वार्षिक शुल्क रु. १०/–
आजीवन शुल्क रु. १००/–

विपश्यना रजि. नं. 19156/71
पोस्टल रजि. नं. NS(M) 16/86

Licence No NS 18
to post without prepayment

प्रेषक :

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि इगतपुरी–४२२४०३
(जि. नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)